# भारत की मूर्तिकला परम्परा में मेवाड़ का अवदान

*डॉ. भगवान सिंह शेखावत

भारतीय मूर्तिकला का इतिहास स्थापत्यकला से भी प्राचीन है जिसका उद्‌भव हड़प्पा सभ्यता में ही हो गया था जो क्रमशः विकसित व परिपक्व होती गई। भारतीय मूर्तिकला परम्परा का गौरवमयी इतिहास रहा है जिसमें राजपूताना के मेवाड़ क्षेत्र ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मेवाड़ की मूर्तिकला का चरमोत्कर्ष नवीं–दसवीं सदी से लेकर पन्द्रहवी सदी तक रहा है। प्राक्‌ऐतिहासिक एवं आद्यऐतिहासिक काल संबंधी मूर्तिकला के अवशेष मेवाड़ में नही मिलते। प्रथम शताब्दी ई. पू. के मूर्तिकला के साक्ष्य नगरी (माध्यमिका) से प्राप्त होते है जो शुंगकालीन है। नगरी में प्रस्तर स्तम्भ व स्तम्भ शीर्ष को आर. सी. अग्रवाल ने भारतीय कला की अनुपम निधि माना है तथा इनका काल 5–6 वीं सदी बताया है। नगरी के पास लघुस्थल पर 'नटेश' शिव भाव की अभिव्यक्ति की गई है जो नचना कुठार व भुमरा की कला का स्मरण कराती है।[1]

पन्द्रहवी सदी में मेवाड़ की मूर्तिकला विकास यात्रा में कुंभलगढ़ दुर्ग से प्राप्त प्रतिमाऐं, एकलिंग जी के प्रासाद की विष्णु मूर्तियाँ तथा राणा कुंभा निर्मित किर्तिस्तम्भ की प्रतिमाऐं महत्वपूर्ण है। मध्यकालीन मेवाड़ में मूर्तिकला वैष्णव धर्म से वृहद् रूप में प्रभावित हुई है। मेवाड़ ''बिजौलिया'' नामक स्थान पर 3 मुख व 6 हाथों वाली एक देव पुरुष की प्रतिमा मिली है जिसमें मुख क्रमशः सिंह, अश्व व वराह के है।[2] कुंभलगढ़ से उपलब्ध अधिकांश मूर्तियों की रचना ''रूपमन्ड़न'' के अनुसार की गई है जिसमें विष्णु के विविध स्वरूपों–संकर्षण, मधुसूदन, प्रधुम्न, पुरुषोत्तम, वासुदेव, दामोदर को व्यक्त करने वाली प्रतिमाऐं है। उदयपुर नगर में राणा जगत सिंह के शासनकाल में बनाये गए जगन्नाथराय (जगदीश मंदिर) के प्रासाद की प्रतिमाऐं एवं मूर्तियाँ वैष्णव परम्परा का उत्कृष्ट उदाहरण है इसमें जगदीश की चतुर्भुज विष्णु प्रतिमा है जो काले पत्थर से निर्मित है व प्रतिमा का सिर छत्राकार है।[3] इसकी चारो भुजाओं में दाये ऊपर के हाथ में पदम, बायें ऊपर के हाथ में शंख, दायें नीचे के हाथ में गदा, एवं बायें नीचे के हाथ में चक्र है। यह मूर्ति मेवाड़ के कारीगरों की तकनीकी कुशलता को व्यक्त करती है।

राजस्थान में वैष्णव प्रतिमाऐं मन्ड़न से पूर्व भी बनती थी। नागदा के सहस्त्रबाहु (प्रचलित नाम सास–बहु) मंदिर 10–11वीं सदी में बनाये गये है इस मूर्ति में वराह व सिंह मुख है तथा विष्णु के एक हाथ में शंख, धनुष, कमल, चक्र है और दूसरे हाथ में गदा, वज्र–ढ़ाल व अंकुश है।[4]

मन्ड़न ने अपने शिल्पग्रंथ ''रूपमन्ड़न'' (अध्याय 3) में 16 हाथों वाली एवं नृसिंह–वराहादि मुख युक्त विष्णु प्रतिमा को ''त्रैलोक्यमोहन'' की संज्ञा प्रदान की है।[5] एकलिंग जी के मुख्य मंदिर के पास मंड़न की उपर्युक्त वर्णित विष्णु प्रतिमा मिली है जिसके 16 हाथ है, वराह व सिंह मुख है, गरूड़ ने भगवान विष्णु को ऊपर उठाकर रखा हुआ है। पुरातत्त्वविद, आर. सी. अग्रवाल ने ये दावा किया है कि पूर्वमध्ययुगीन या 14–15वीं से पूर्व की इस श्रेणी की कोई प्रतिमा अभी तक राजस्थान के किसी भी भाग से प्राप्त नहीं हुई है। मंड़न ने 20 हाथों वाली विष्णु प्रतिमा का वर्णन भी किया है जिसे उसने ''विश्वरूप'' नाम दिया है। इस श्रेणी की मूर्ति नागदा (एकलिंगजी) से मिली है जिसका

काल 15वीं सदी है जो वर्तमान में उदयपुर म्युजियम में सुरक्षित है।

राणा कुम्भा ने मालवा विजय स्मृति में एवं उपास्य देव भगवान विष्णु के स्तम्भ के रूप में किर्ति स्तम्भ का निर्माण करवाया था जो भारत का एकमात्र स्तम्भ है जो भीतर और बाहर दोनो तरफ मूर्तियों के अलंकरण से सुसज्जित है, इस स्तम्भ में अंकित शिलालेख से इसके शिल्पकार (जइता तथा उसके पुत्र नापा, पूँजा) तथा निर्माण अवधि (1496–1516 ई.) का पता चलता है। यह 30 फीट लम्बा–चौड़ा, 120 फीट ऊँचा व 9 मंजिलो वाला है जिसमें आठवीं मंजिल में कोई प्रतिमा नहीं है तथा नवीं मंजिल में प्रशस्ति लगी है इसके अतिरिक्त अन्य सभी मंजिलों पर विष्णु शैव एवं शाक्त सम्प्रदायों के देवी–देवताओं की मूर्तियाँ है। यह वस्तुतः विजयस्मारक मात्र नहीं अपितु भारतीय मूर्तिकला का स्वर्णिम अध्याय है।

मेवाड़ मूर्तिकला हिन्दू धर्म की सम्प्रदाय विशेष पर आधारित कला नहीं अपितु सभी सनातनी आस्थाओं का प्रतिबिम्ब है, अतः वैष्णव के साथ शाक्त मठ से भी संबंधित मूर्तियाँ प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। उदयपुर के पास 'जगत' ग्राम का अम्बिका भवन की दुर्गा–महिषमर्दिनी के भिन्न स्वरूपों की मूर्तियाँ उल्लेखनीय है जिनके साथ शुक (तोता) की आकृति बनी है जो शुकप्रिय अम्बिका की ओर संकेत करती है। कुंभलगढ़ दुर्ग में ब्रह्मणी, माहेश्वरी, कौमारी आदि मूर्तियाँ भी मिलती है। इनमें चतुर्भुजा देवी महिष–राक्षस का वध करती हुई मूर्ति महत्वपूर्ण है जिसकी चरण चौकी पर लेख का अभाव है, देवी के सिर पर मुकुट, मुण्डमाला आदि आकर्षण ढंग से बनाये गये है। इसी क्रम में महाराणा राज सिंह द्वारा बनवाये गये उदयपुर स्थित अम्बामाता प्रासाद के गर्भगृह में प्रतिष्ठित दुर्गामाता की प्रतिमा उल्लेखनीय है।[6] यह प्रतिमा सफेद संगमरमर पत्थर से बनी चर्तुबाहु की मूर्ति है जो हाथों में खड़ग, चक्र, शूल तथा पानपात्र लिये हुए है, इसके नीचे माता के वाहन सिंह की मूर्ति लगी है।

वैष्णव व शाक्त के अतिरिक्त ''शैवमत'' से संबंधित मूर्तिपरम्परा मेवाड़ में व्यापक रूप में विद्यमान रही है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिव के अवतार लकुलीश की प्रतिमाऐं प्रमुख है। मेवाड़ की 17–18वीं सदी की मूर्तिकला के सन्दर्भ में 1716 में प्रतिष्ठित सीसाराम गॉव में निर्मित वैधनाथ महादेव मन्दिर की मूर्ति आकर्षक है जिसमें शिव के विविध स्वरूपों को व्यक्त करने वाली प्रतिमाऐं, सुन्दरियों की प्रतिमाऐं, नृत्य आखेट संलग्न रमणियों की मूर्तियाँ आकर्षण का केन्द्र है।[7] शैव मूर्तिकला के क्रम में राजराजेश्वर प्रासाद का चतुर्मुखी शिवबाण प्रमुख है जो काले पत्थर से निर्मित है। गुहिलवंशी शासको के इष्टदेव भगवान श्री एकलिंग–नाथ जी की प्रतिमा महत्वपूर्ण है, इसमें मुख्य मूर्ति चतुर्भुज है तथा काले पाषाण से निर्मित है।[8]

मेवाड़ मूर्तिकला के अन्तर्गत विष्णु, शिव एवं दुर्गा के विविध स्वरूपों के अतिरिक्त कृष्ण, गणेश, कार्तिकेय आदि प्रतिमाऐं भी मिलती है। उदयपुर के जगन्नाथ मंदिर में श्री कृष्ण की एक प्रतिमा मिलती है जिसे स्थानीय लोग 'दाणेराय जी' की प्रतिमा कहते है।[9] सुप्रसिद्ध नौचोकी नामक राजसमंद बांध की पाल पर 3 मण्डप है जिनकी छतों पर सुन्दर मूर्तियाँ है जो उत्कृष्ट तक्षण कला का अनुपम उदाहरण है। इनमें प्रायः मूर्तियाँ रामायण–महाभारत कथा से संबंधित है। लेकिन कुछ मूर्तियाँ उल्लेखनीय है जो वाद्ययंत्रो, पशु–पक्षियों सुंदरियों के साथ–साथ तत्कालीन सामाजिक जीवन को प्रदर्शित करने वाली मूर्तियाँ भी है। मेवाड़ की मूर्तियों का मुख्य केन्द्र हालांकी स्वाभाविक रूप से मंदिर है परन्तु तालाब–बावड़ीयों के निकट भी मूर्तियाँ मिली है।

मेवाड़ की मूर्तिकला से धार्मिक आस्था व तक्षण कला की जानकारी प्राप्त होती है परन्तु ये मूर्तियाँ तुलनात्मक रूप में सामाजिक जनजीवन का पक्ष नहीं रख पाई जिससे कला प्रेमियों के साथ शोधार्थियों को भी अवश्य निराशा होती है।

सुस्पष्ट है कि मेवाड़ की मूर्तिकला राजपूताना की रियासती कला का ही प्रतिनिधित्व नहीं करती अपितु गौरवमयी

भारतीय कला के अभिन्न अंग के रूप में स्वंय का उल्लेखनीय स्थान रखती है परन्तु कला–समीक्षकों का ध्यान तुलनात्मक रूप से इस समृद्ध धरोहर पर नहीं गया है। मेवाड़ की मूर्तिकला को मध्यकाल में हुए आक्रमणों व राजनीतिक संघर्षो का खामियाजा भी भुगतना पड़ा है। सरकारी क्षेत्र से संरक्षण यदि प्राप्त हो तो स्थानीय मूर्तिकला के धर्म, सौन्दर्य, तकनीक आदि विविध पक्ष भारतीय कला मानचित्र पर उभर सकते है जो शोध जगत के साथ ही कला प्रेमियों एवं पर्यटकों के लिए भी स्वाभाविक आकर्षण का केन्द्र बन सकता है।

***सहायक आचार्य**
**इतिहास विभाग**
**जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर**

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. राजस्थान की अद्वितीय प्रस्तर प्रतिमाऐं (शीर्षक लेख), आर. सी. अग्रवाल, शोध पत्रिका, पृष्ठ 19 साहित्य संस्थान राज. विद्यापीठ, उदयपुर (त्रैमासिक पत्रिका)
2. राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला, रतनचन्द्र अग्रवाल, शोध पत्रिका, पृष्ठ 8, उदयपुर, अंक आश्विन वि.स. 2014
3. मेवाड़ की कला और स्थापत्य, डॉ. राजशेखर व्यास, पृष्ठ 247, वर्ष 1988
4. राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला में ''महाविष्णु'' संबंधी कुछ प्रतिमाऐं (शीर्षक लेख), आर.सी. अग्रवाल, त्रैमासिक पत्रिका, शोध पत्रिका, अंक 1, पौष, वि.स. 2014, पृष्ठ 14,
5. वही पृष्ठ 19
6. अम्बामाता की चरण चौकी का शिलालेख, गौ. ही. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरी जिल्द, पृष्ठ 575
7. मेवाड़ की कला और स्थापत्य, डॉ. राजशेखर व्यास, पृष्ठ 263
8. राजस्थान का इतिहास, डॉ. जी.एन. शर्मा, पृष्ठ 590
9. जगन्नाथ प्रशस्ति शिला–2, श्लोक–10, प.गो.ही. ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ 527